

बिहार में नक्सलवादी आंदोलन का उद्भव और विस्तार (1967 से 1980) : एक अध्ययन

डॉ० गीतांजलि*

नक्सलवादी आंदोलन भारत के इतिहास की एक प्रमुख घटना रही है। बिहार जैसे राज्य में तो यह एकमात्र सामाजिक आंदोलन है जिसने गाँव के गरीबों एवं वंचितों की समस्याओं को उठाया है। यह पहला ऐसा आंदोलन है जिसमें गरीब किसानों के साथ-साथ भूमिहीन खेतिहर मजदूरों ने हिस्सा लिया और बहुत हद तक उसे नेतृत्व प्रदान किया। 1967 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के एक गाँव नक्सलवादी से शुरू होने के कारण इस आन्दोलन को नक्सलवाद कहा जाने लगा। भारत में नक्सलवादी आन्दोलन के पीछे की प्रेरणा को समझने के लिए हमें आधी शताब्दी और पीछे जाना होगा। 1949 में चीन में कम्युनिस्ट शासन की स्थापना के बाद ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों को प्रमुखता देने वाला क्रांति का एक दूसरा प्रतिमान बहुत से लोगों को ज्यादा अपील करने लगा। चीन की क्रांति के सफलता के काल में ही हैदराबाद के तेलंगाना क्षेत्र में किसानों का सशस्त्र आन्दोलन शुरू हो गया था और कुछ चीनी प्रतिमान पर ही वहाँ से बड़े भू-स्वामियों को खदेड़ दिया गया था। इस आन्दोलन को फौज के सहारे दबा दिया गया। लेकिन किसान विद्रोह की संभावना आंध्र के इस भू-भाग से कभी ओझल नहीं हुई। तेलंगाना के माओवादी संगठन में उस भावना की निरंतरता देखी जा सकती है। इधर चीन की आर्थिक नीति को लेकर 1960 में सोवियत संघ से विवाद इतना गहरा हो गया कि इसका सीध असर दुनिया भर के कम्युनिस्ट आन्दोलन पर पड़ा और भारत में रूस समर्थक और चीन समर्थक धड़ों में कम्युनिस्ट पार्टी विभाजित होने लगी।¹

पहला गंभीर विभाजन 11 अप्रैल 1964 को हुआ जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) से अलग होकर एक नई पार्टी बनी। उसका नाम था। सीपीआई-मार्क्सवादी। नई पार्टी की जरूरत इसलिए महसूस की गई, क्योंकि असंतुष्ट सदस्यों की निगाह में सीपीआई का नेहरू सरकार के प्रति दृष्टिकोण हमदर्दी का था जो संसदीय पद्धति की जरूरत सिर्फ टेक्टिकल है- काम चलाने भर के लिए। उससे आधारभूत क्रांति नहीं हो पायेगी।² उस वक्त शायद सीपीआई-मार्क्सवादी के नेतृत्व को यह यकीन नहीं था कि तीन वर्ष बाद ही उसे सरकार में शामिल होना पड़ेगा।

*एम.ए., पीएच.डी., इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

1967 में देश के कई भागों में गैर-कांग्रेसवाद के लहर के प्रभाव में पश्चिम बंगाल में भी गैर-कांग्रेसी सरकार बनी, जिसमें कांग्रेस से अलग हुए एक गुट के साथ सीपीआई और सीपीएम ने मिलकर गठबंधन सरकार बनायी। इस सरकार के पास लोकतांत्रिक ढाँचे के भीतर किसी मूलभूत परिवर्तन की नीति नहीं थी। इसी स्थिति में सीपीएम के अपने ही असंतुष्टों ने उत्तरी बंगाल के नक्सलवादी इलाके में किसानों का आन्दोलन छेड़ दिया। यह आन्दोलन चीनी वैचारिक प्रयोग को भारत की जमीन पर उतारने का प्रथम गंभीर प्रयास था। इस आन्दोलन को आरंभिक नेतृत्व मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य चारु मजुमदार, कानू सान्याल, खोखन मजुमदार तथा जंगल संथाल ने प्रदान किया। इनके नेतृत्व में भूमिहीनों को भूस्वामियों/जोतदारों की जमीन पर कब्जा कर उनके सफाया के लिए प्रोत्साहित किया गया। सीपीएम के उन कार्यकर्ताओं में जो संवैधानिक राजनीति से क्षुब्ध थे उन्हें एक नई दिशा मिली। और मूलतः बंगाल में लेकिन कुछ हद तक सारे भारत के नौजवानों में सांस्कृतिक क्रांति के तर्ज पर कुछ कर डालने का उत्साह पैदा हुआ। 'चीन के राष्ट्रपति हमारे राष्ट्रपति' जैसे नारे इन युवाजनों में काफी लोकप्रिय हो गये।³

भारत में बिहार भी उपर्युक्त घटना से अछूता नहीं रहा। यहाँ भी सामंती प्रवृत्ति के लोग इस कार्य में पीछे नहीं रहे। सामंतों का अत्याचार सर्वहारा वर्ग की महिलाओं एवं मजदूरों पर चरम सीमा पर था। इन सभी घटनाओं ने बिहार में नक्सली नेताओं को आने के लिए बाध्य कर दिया। बिहार में नक्सलवाद कब से फैला, इसके बारे में दो तरह की राय है। लिब्रेशन ग्रुप के लोग बिहार में नक्सलवाद की शुरुआत भोजपुर से मानते हैं। इसलिए वे नारा देते हैं- 'नक्सलवादी टू एकवारी'। एकवारी भोजपुर जिले का हिस्सा है। लेकिन यह सच नहीं है। बिहार में नक्सलवाद का आरम्भ मुजफ्फरपुर के मुशहरी से हुआ।

सीपीएम के 600 कार्यकर्ताओं ने विद्रोह किया और वे सत्यनारायण सिंह के नेतृत्व में नक्सलवादी हो गये। उस वक्त सत्यनारायण सिंह सीपीएम की बिहार शाखा के जेनरल सेक्रेटरी थे। मुजफ्फरपुर में 1968 से किसान संग्राम समिति नामक संगठन काम कर रहा था, जिसके नेता राजकिशोर सिंह थे। इस समिति में नक्सली हावी थे। जमीन की पहली जब्ती गंगापुर में हुई। नरसिंहपुर का जमींदार बिजली सिंह अपने लठैतों के साथ लड़ने आया, पर लठैतों को पीटकर भगा दिया गया। कहा जाता है कि इस संघर्ष में बिजली सिंह के हाथी का सूँड़ काट लिया गया था। किसानों ने अरहर की फसल काट ली। नक्सली नेता सत्यनारायण सिंह ने घोषणा की- "गंगापुर लड़ाकू किसान जनता का प्रतीक बन गया है।"⁴

15 अगस्त, 1968 को किसानों ने जमींदारों की फसल लूट ली और इसी दिन मुशहरी प्रखण्ड में उन्होंने सशस्त्र प्रदर्शन किया। इसके बाद पुलिस की ओर से कार्रवाई शुरू हुई। कई फर्जी मुकदमें किये गये। आन्दोलनकारी भूमिगत हो गये। किसानों ने लगातार जमींदारों के घर पर आक्रमण किया। इस क्षेत्र के छह जमींदारों की उन्होंने हत्या कर दी। इस दरम्यान किसानों ने ऋण के कागजातों को जलाया, अन्न लूटा और फसलों पर कब्जा किया। 23 अगस्त को हरकेश गाँव में घंटों तक पुलिस से लड़कर किसानों ने अपने गिरतार साथियों को छुड़ा लिया। मई 1969 तक यह आन्दोलन दरभंगा, चम्पारण और दक्षिण मुंगेर में फैल गया। मुशहरी में कुल 18 लोग मारे गये। मरने वालों में दो महत्वपूर्ण नेता भी थे—राजकिशोर सिंह और कॉमरेड तसलीम। बढ़ते हुए नक्सलवाद से निपटने के लिए बिहार के मुख्यमंत्री दारोगा प्रसाद राय ने दरभंगा, मुंगेर, जमशेदपुर और मुजफ्फरपुर जिले के लिए विशेष पुलिस सेल गठन का फैसला किया। एक छोटे अंतराल में ही यहां के कृषि-क्षेत्र की अशांति ने दीर्घकालीन कृषि आंदोलन की संभावनाओं को सामने ला दिया। इन संभावनाओं को देखकर क्रांतिकारी कम्युनिस्ट इस किसान संघर्ष को उत्तर के श्री काकुलम मानने के लिए उत्साहित हो गए। हालांकि यह संघर्ष शुरू होने के पहले ही लड़खड़ा गया था फिर भी इसने बिहार में सशस्त्र संघर्ष के दरवाजे खोल दिए।¹⁵

जयप्रकाश नारायण ने 'नक्सलवादी खतरा' को मिटाने के उद्देश्य से विकास कार्य शुरू करने के लिए मुसहरी को चुन लिया। उस समय उन्होंने कहा कि बंधुआ मजदूर की मजदूरी निर्धारित मजदूरी की आधी थी और ग्रामीण हिंसा की जमीन गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक-आर्थिक अन्याय के बंदोलत तैयार हुई। मुसहरी का संघर्ष एक राजनीतिक विचारधारा को लागू करने के क्रम में पैदा हुआ था, लेकिन राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों, जमींदार और शूदखोर कृषि क्षेत्र की अशांति पर दोष मढ़ने पर उतारू थे।¹⁶

उल्लेखनीय है कि मुसहरी संघर्ष दो बुनियादी मुद्दों पर लड़ा गया था: 'जमीन जोतने वालों की' के लिए और जातीय भेदभाव के खिलाफ। इस प्रकार यह संघर्ष आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ था। लेकिन इस प्रक्रिया में सामंती सत्ता को नष्ट करने और किसानों के प्राधिकार को स्थापित करने के मूल उद्देश्य की उपेक्षा हुई। यही उपेक्षा संघर्ष की सीमा रेखा बन गई। माओ ने सिखाया कि जनता और पार्टी पर भरोसा रखो। लेकिन नेतृत्व की इस नीति से किसानों के खिलाफ पूर्वग्रह का संकेत मिला। इस हद तक पूर्वाग्रह कि उसने उन्हें पिछड़ा और सिर्फ आर्थिक मुद्दों से सरोकार रखने वाला मान लिया।¹⁷

बहुतेरे कार्यकर्ताओं ने भी सिर्फ आधुनिक हथियारों पर अत्यधिक भरोसा किया। एक बार फिर यह बात माओ के विचार से मेल नहीं खाती थी कि शुरू में परंपरागत हथियारों का उपयोग हो और बाद में पुलिस के आग्नेयास्त्र छीन लिये जायें। संघर्ष पर नेतृत्व की इस नीति का दबाव भी बना रहा कि गुरिल्ला कार्रवाई का नेतृत्व सिर्फ वही कर सकता है जिसने पहले के संघर्षों में भाग लिया हो। उससे नये नेतृत्व का उदय सीमित हो गया।

तभी बिल्कुल ही अप्रत्याशित रूप से दक्षिण बिहार के भोजपुर में और दूसरे नम्बर पर पटना जिले में यह आन्दोलन गति पकड़ने लगा। भोजपुर और पटना के ये संघर्ष, जिसकी जड़ें भूमि संबंधों की स्थिति और वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों की गहराई में हैं, एक नये ढर्रे पर शुरू हुआ और वहाँ एक नये किस्म की स्थानीय नेतृत्व ने जनता के बढ़ते हुए असंतोष को लोकप्रिय रूपों में अभिव्यक्त करने की कोशिश की। वे नेतागण स्थानीय परिस्थितियों की उपज थे, जो नक्सलवादी और माओ-त्से-तुंग से प्रभावित थे और मार्क्सवाद की थोड़ी बहुत जनकारी भी रखते थे। सी.पी.आई. (एम.) के भूतपूर्व नेताओं के साथ जुड़कर और सी.पी.आई. (एम.एल.) के निर्देशन में इस स्थानीय नेतृत्व ने भोजपुर जिले में, खासकर सर्वप्रथम सहार में जुझारू किसान आन्दोलनों के एक नये दौर का सूत्रपात किया। यह दौर पूर्णतः भूमिगत और गैरकानूनी गतिविधियों का दौर था। छापामार कार्यवाहियों तथा क्रान्तिकारी कमेटियों के द्वारा फसल तथा जमीन दखल करने के लिए जनसमुदाय को गोलबन्द करने तथा हथियार जब्त करने व क्रूर भूमिपतियों एवं दुश्चरित्र लोगों की सफाया नीति के कारण भोजपुर ने धीरे-धीरे आधुनिक भारत के किसान आन्दोलनों के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया।

भोजपुर में नक्सलवादी आंदोलन की शुरुआत सहार ब्लाक के एकवारी गांव से हुई। यहां की जमीन काफी उपजाऊ है। वास्तव में सहार ब्लाक कृषि के मामले में काफी आगे है। इसे 'भोजपुर का हरियाणा' कहा जाता है। एक बिगहा में 40 मन धान की पैदावार वहां सामान्य बात है। इसके बावजूद खेतिहर मजदूरों को काफी कम मजदूरी दी जाती थी। 1980 तक वहां मजदूरों को सिर्फ तीन सेर कच्ची यानि सवा किलो चावल और खेती के समय रात का खाना दिया जाता था। वैसे यह कोई अकेले एकबारी की बात नहीं थी, बल्कि सभी गांवों में यही हाल था। हरवाहे को दो सेर कच्चा चावल रोज का तथा 10-12 कट्टा जमीन खेती के लिए दिया जाता था। हरित क्रांति से भूपतियों की आमदनी में वृद्धि हुई लेकिन वे मजदूरी बढ़ाने के लिए तैयार नहीं थे। छोटी जातियां एक तरह से उनका दास थीं। हालत यह थी कि वहां के जमींदार हरिजनों की बहू-बेटियों की इज्जत कभी और कहीं भी लूट लेते थे और कोई चूँ तक नहीं कर सकता था।¹⁸

ऐसे में जगदीश महतो या 'मास्टर साहब' जिस रूप में बाद में लोकप्रिय हुए, ने हरिजनों को जगाने का प्रयास किया। उनके प्रयास का वहां के जमींदारों ने काफी मजाक उड़ाया। 1967 के चुनाव में जब उन्होंने वहां के जमींदारों द्वारा किए जा रहे बूथ कैम्पेयरिंग का विरोध किया तो उनकी निर्मम पिटाई की गई।

इस चुनाव में जगदीश महतो या 'मास्टर साहब' जिस रूप में वे बाद में लोकप्रिय हुए, ने सीपीआई उम्मीदवार रामनरेश राम के पक्ष में प्रचार किया। रामनरेश राज्य विधान सभा के चौथे आम चुनाव में सहार सुरक्षित सीट से चुनाव लड़ रहे थे। जगदीश महतो एच.डी. जैन स्कूल आरा में विज्ञान शिक्षक और सामाजिक कार्यकर्ता थे। अतीत में उन्होंने टिप्पणी की थी— रस्सी जल गया पर एंटन नहीं गया। इसका मतलब था कि भूमिहार जमींदारों की जमींदारी चली गई लेकिन सामंती चाल-चलन नहीं गया। जब जमींदार मतदान में गड़बड़ी कर रहे थे, जगदीश मास्टर ने उसका विरोध किया और बुरी तरह उनकी पिटाई हुई।⁹

इस बीच 'भारत में क्रांति के वसंत का वज्रनाद' की खबरें बिहार में फैल चुकी थी। यह घटना नक्सलबाड़ी में हुई थी। अपनी चोट से उबरने के बाद जगदीश मास्टर कलकत्ता गए। वहाँ वे चारू मजूमदार और नक्सलबाड़ी के अन्य नेताओं से मिले और संघर्ष को आगे बढ़ाने के दृढ़ निश्चय के साथ लौटे। रामेश्वर अहीर या 'साधू जी' भी जगदीश मास्टर और रामनरेश राम के साथ जुड़ गए और उन लोगों ने सहार गांव में संघर्ष तेज किया। फरवरी 1970 में चारू मजूमदार ने शाहाबाद क्षेत्र का दौरा किया और नाथुपु, रोहतास में सी.पी.आई (एम.एल.) का पहले प्रेस सम्मेलन को संबोधित किया। 14 अप्रैल 1970 को आरा शहर में विशाल मशाल जुलूस निकला। उसमें नारा लगा 'हरिजनिस्तान लड़के लेंगे'। आरा शहर में दीवारों पर ऐसे नारे भी देखे गए : "नक्सलबाड़ी लाल सलाम, कामरेड माओ लाल सलाम"। नेताओं ने संघर्ष जारी रखने के लिए जनता को किसान मजदूर संग्राम समिति में संगठित किया।¹⁰

इसके बाद एकवारी में जनवरी 1971 से मार्च 1971 के बीच एक के बाद पांच सफाए हुए। एकवारी में पहली हत्या शिवपूजन सिंह की हुई जो स्वयं तो छोटे किसान थे लेकिन जमींदारों के लठैत थे। रामेश्वर अहीर, रामनरेश दुसाध ने इस चिंगारी को ज्वाला बना दिया।

एकवारी की घटना से प्रेरित होकर आसपास के अनेक गांवों के हरिजनों ने भी भूपतियों के अत्याचारों के खिलाफ सर उठाना शुरू कर दिया। एकवारी के आसपास के गांवों अगिआंव, बेरथ, बरुही और चंवरी में भी नक्सली गतिविधियां शुरू हो गईं। 26 जनवरी, 1973 को नक्सलियों की अगुवाई में करीब सौ भूमिहीन किसान-मजदूरों ने चंवरी गांव के एक व्यापारी का चावल जब्त कर लिया। न्यूनतम

मजदूरी के सवाल पर इस गांव में दो साल से आंदोलन चल रहा था और इस संघर्ष के मुखिया थे गणेशी दुसाध। गणेशी दुसाध नक्सलवादी बनने के पहले साधुओं की शरण में भी गए थे लेकिन एकवारी की घटनाओं ने उन्हें नक्सलवाद की तरफ खींचा। 30 नवम्बर, 1972 को रामनाथ राय नामक एक महाजन को मौत के घाट उतार दिया गया। 9 अप्रैल, 1973 को एकवारी के मुनीनाथ राय की चार बिगहा जमीन जब्त कर ली गई और वहां एक लाल झंडा लगा दिया गया। 19 अप्रैल, 1973 को कारू राय को नक्सलियों ने खलिहान में ही मार दिया।¹¹

लेकिन सबसे जबर्दस्त संघर्ष हुआ 6 मई, 1973 को, जब पुलिस और नक्सली आमने-सामने हुए। इस दिन सुबह छह बजे एक पुलिस दल चंवरी पहुंचा। पुलिस खंडेरा दुसाध के घर की तलाशी लेना चाहती थी लेकिन भूमिहीन ग्रामीणों ने उन्हें घुसने नहीं दिया। पुलिस और नक्सलवादियों के बीच दिन में एक बजे से तीन बजे तक संघर्ष चलता रहा। एक तरफ पुलिस की राइफलें थीं और दूसरी तरफ मजदूरों के पारंपरिक हथियार। इस संघर्ष में लाल मोहर दुसाध, गणेशी दुसाध, बालकेसर दुसाध और दीनानाथ तेली पुलिस के हाथों मारे गए। इसके अलावा 36 लोगों को गिरतार किया गया। इस संघर्ष में 19 पुलिस वाले भी घायल हुए। कांग्रेस के एमएलसी रणजीत बहादुर ने राजनीतिक दलों से प्रशासन को पूर्ण समर्थन देने की अपील की ताकि चंवरी जैसी कानून-व्यवस्था की समस्या कहीं और पैदा न हो। उन्होंने नक्सलियों से निपटने के लिए पुलिस की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस कांड की अनुगूँज बिहार की राजधानी पटना में सुनाई दी। विपक्ष के जबर्दस्त मांग पर एक जांच आयोग बिठाया गया, जिसने 18 मई, 1974 से 5 अक्टूबर, 1975 तक सुनवाई करने के बाद फैसला दिया कि पुलिस ने आत्मरक्षा में गोली चलाकर ठीक किया क्योंकि उनके विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध में प्रशिक्षित नक्सली थे।¹²

बिहार सरकार ने भोजपुर के नक्सली आंदोलन को दबाने का पूरा प्रयास किया। 1970 के अक्टूबर महीने में ही मुख्यमंत्री दारोगा प्रसाद राय ने नक्सली विद्रोह की समीक्षा के लिए मंत्रिमंडल की एक विशेष बैठक बुलाई, जिसमें भोजपुर के ग्रामीण इलाकों में पुलिस को विशेष अधिकार देने का फैसला किया गया और नक्सली समस्या से निपटने के लिए एक विशेष प्रकोष्ठ बनाया गया। लेकिन इसका परिणाम उल्टा ही हुआ। पुलिस की दमनात्मक कार्रवाइयों के बावजूद नक्सली आंदोलन हरिजनों, मुसहरों दुसाधों एवं अन्य पिछड़ी जातियों के गरीब किसानों में लगातार लोकप्रिय होता गया। भोजपुर में नक्सलवादी विचारधारा के प्रसार एवं पैठ का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि उसके प्रतिनिधि रामेश्वर प्रसाद आरा संसदीय क्षेत्र से 1989 के आम चुनाव में आईपीएफ के

उम्मीदवार के रूप में विजयी हुए थे। सन् 1975 तक आते-आते सरकार भी मानने लगी कि बिहार के कई जिलों में नक्सली गतिविधियों का विस्तार हो गया है।

माओ ने कहा कि हजारों वर्षों से प्रतिक्रियावादी शासक वर्गों द्वारा छले गए और भयभीत रखे गए मेहनतकश वर्गों के लिए अत्यंत मुश्किल है कि हथियारबंद होने के महत्व के प्रति उन्हें जागरूक बना दिया जाए। उन्होंने यह भी कहा कि किसान नेताओं को यह सच्चाई समझ लेनी चाहिए कि "राजसत्ता का जन्म बंदूक की नाल से होता है, युद्ध का खात्मा सिर्फ युद्ध से और बंदूक का खात्मा सिर्फ बंदूक से ही हो सकता है।"¹³ चेबरी में हड़ताल के फलस्वरूप मजदूरी नहीं बढ़ी। हालांकि इस हड़ताल ने पहली बार संघर्ष करने के लिए मजदूरों की शक्ति को गोलबंद करने में सफलता पाई। इससे जमींदारों के भीतर आतंक भी पैदा हो गया। इस किसान प्रतिरोध को पूरी तरह क्रांतिकारी किसान कमेटी ने गोलबंद किया था। उसका नेतृत्व स्थानीय पिछड़े और दलित समुदाय से उभरा था। जब स्थानीय नेताओं ने बाहरी नेतृत्व के साथ गठबंधन बनाया तो आंदोलन जुझारू, स्थायी और टिकाऊ बन गया।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से साफ है कि भोजपुर के नक्सली आंदोलन में वर्ग संघर्ष की केन्द्रीय भूमिका को मान्यता मिली। आंदोलन के भागीदार जातीय गठबंधन से ऊपर उठे और उन्होंने वर्गीय गठबंधन का निर्माण किया। जैसे-जैसे किसान संघर्ष और उसकी सफलता के समाचार अगल-बगल के गांवों में फैलते गए, वैसे-वैसे अधिक कार्यकर्ता किसान संगठनों में जुड़ते गए। इससे अनेक गांवों में हथियारबंद इकाई बनाने की क्षमता पैदा हो गई। साथ ही हर सफाया अभियान के बाद प्रचार जारी रखने की क्षमता भी। संघर्ष के इसी मोड़ पर आधुनिक हथियारों की जरूरत महसूस हुई और इस उद्देश्य से पुलिस कैंपों को निशाना बनाया गया। यह प्रक्रिया किसी अल्पकालिक योजना का प्रतिफल नहीं थी। उल्टे वह तो क्षेत्रों के ठोस अनुभव से पैदा हुई थी।

पूर्ववर्ती संघर्षों के लक्षणों का अनुसरण करते हुए भोजपुर के कृषि संघर्ष ने अपने समय के बहुतेरे ज्वलंत मुद्दे उठाए। इससे भी संघर्ष के गैरसंसदीय स्वरूप का रूझान तय हुआ। शोषित जनता और स्थानीय नेताओं ने तब तक समझौता वार्ता के जनतांत्रिक तरीकों, कानूनी लड़ाइयों, गांवों स्तर के निबटारों तक ही प्रयास किया था। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। 1968 से ही भोजपुर के क्रांतिकारी आंदोलन ने अनुसूचित जाति में मुसहर, रविदास, ऊपरी पिछड़ी जातियों के यादव, कोइरी और कुर्मी और अत्यंत पिछड़ी जाति के कहार, ठाकुर और कानू को ऊँची जाति के जमींदारों के जुल्म और सामंती व्यवहार के खिलाफ गोलबंद किया। ऊँची

जाति के अनेक प्रबुद्ध लोग भी सामंती व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने के लिए जुझारू संगठनों में शामिल हुए।

भोजपुर में नक्सली आंदोलन की शुरुआत किसी नक्सली संगठन के नेतृत्व में नहीं हुई थी, बल्कि स्थानीय लोगों के नेतृत्व में हुई थी और इसके असली किरदार भूमिहीन खेतिहर मजदूर थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि यह आर्थिक कारणों के साथ-साथ सामाजिक कारणों से भी प्रेरित था। प्रकारांतर से कहा जा सकता है कि भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को हिंसा की राह पर ला खड़ा करने में आर्थिक शोषण के साथ-साथ सामाजिक अपमान की भी अहम भूमिका रही है। जैसे-जैसे आंदोलन का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे इसमें राजनीतिक मुद्दे भी शामिल होते गए।

संदर्भ सूची

1. अजय कुमार सिंह, नक्सलिज्म इन बिहार, विशाल पब्लिकेशन, जालंधर, 2007, पृ. 23-24.
2. प्रकाश लुईश, जनशक्ति : मध्य बिहार में नक्सलवादी आंदोलन, मानक, न्यू दिल्ली, 2008, पृ.147
3. जयप्रकाश नारायण, फेस टू फेस, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 1972, पृ. 10
4. प्रकाश लुईश, पूर्वोक्त, पृ. 149
5. के.के.दत्ता, बायोग्राफी ऑफ कुंवर सिंह एण्ड अमर सिंह, के.पी. जयसवाल इंस्टिट्यूट, पटना, 1957
6. देखें जॉन बीम्स की मेम्वायर्स ऑफ ए बंगाली सिविलियन? मनोहर, नई दिल्ली, 1984
7. कल्याण मुखर्जी, भोजपुर : ए सोसल एण्ड इकॉनॉमिक सर्वे नेशनल लेबर इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली (अप्रकाशित)
8. कल्याण मुखर्जी और राजेन्द्र सिंह यादव, भोजपुर : नक्सलिज्म इन दी प्लेन्स ऑफ बिहार, राधा कृष्ण, नई दिल्ली, 1980, पृ. 14
9. उपरोक्त, पृ. 51
10. अरविंद नारायण दास, 'एग्रेरियन अनरेस्ट एण्ड सोसियो-इकॉनामिक चेंज, 1900-1980', मनोहर, दिल्ली, 1983, पृ.245
11. कल्याण मुखर्जी, 'भोजपुर : नक्सलिज्म इन दी प्लेन्स ऑफ बिहार', पूर्वोक्त, पृ. 34
12. कुल्फ लेजेन्स्की, एग्रेरियन रिफार्म ऐज अनफिनिस्ड बिजनेस, अक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1978, पृ. 337
13. कल्याण मुखर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 34

